चौपाई :

*** स्याम सरीरु सुभायँ सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन॥ जावक जुत पद कमल सुहाए। मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाए॥1॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी का साँवला शरीर स्वभाव से ही सुंदर है। उसकी शोभा करोड़ों कामदेवों को लजाने वाली है। महावर से युक्त चरण कमल बड़े सुहावने लगते हैं, जिन पर मुनियों के मन रूपी भौंरे सदा छाए रहते हैं॥1॥

*** पीत पुनीत मनोहर धोती। हरति बाल रबि दामिनि जोती॥ कल किंकिनि कटि सूत्र मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर॥2॥

भावार्थ:

पवित्र और मनोहर पीली धोती प्रातःकाल के सूर्य और बिजली की ज्योति को हरे लेती है। कमर में सुंदर किंकिणी और कटिसूत्र हैं। विशाल भुजाओं में सुंदर आभूषण सुशोभित हैं॥2॥

*** पीत जनेउ महाछबि देई। कर मुद्रिका चोरि चितु लेई॥ सोहत ब्याह साज सब साजे। उर आयत उरभूषन राजे॥3॥

भावार्थ:

पीला जनेऊ महान शोभा दे रहा है। हाथ की अँगूठी चित्त को चुरा लेती है। ब्याह के सब साज सजे हुए वे शोभा पा रहे हैं। चौड़ी छाती पर हृदय पर पहनने के सुंदर आभूषण सुशोभित हैं॥3॥

*** पिअर उपरना काखासोती। दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती॥ नयन कमल कल कुंडल काना। बदनु सकल सौंदर्ज निदाना॥4॥

भावार्थ:

पीला दुपट्टा काँखासोती (जनेऊ की तरह) शोभित है, जिसके दोनों छोरों पर मणि और मोती लगे हैं। कमल के समान सुंदर नेत्र हैं, कानों में सुंदर कुंडल हैं और मुख तो सारी सुंदरता का खजाना ही है॥4॥

*** सुंदर भृकुटि मनोहर नासा। भाल तिलकु रुचिरता निवासा॥ सोहत मौरु मनोहर माथे। मंगलमय मुकुता मनि गाथे॥5॥

भावार्थ:

सुंदर भौंहें और मनोहर नासिका है। ललाट पर तिलक तो सुंदरता का घर ही है, जिसमें मंगलमय मोती और मणि गुँथे हुए हैं, ऐसा मनोहर मौर माथे पर सोह रहा है॥5॥

छन्द :

*** गाथे महामनि मौर मंजुल अंग सब चित चोरहीं। पुर नारि सुर सुंदरीं बरहिबिलोकि सब तिन तोरहीं॥ मनि बसन भूषन वारि आरति करहिं मंगल गावहीं। सुर सुमनबरिसहिं सूत मागध बंदि सुजसु

सुनावहीं॥1॥

भावार्थ:

सुंदर मौर में बहु मूल्य मणियाँ गुँथी हुई हैं सभी अंग चित्त को चुराए लेते हैं। सब नगर की स्त्रियाँ और देवसुंदरियाँ दूलह को देखकर तिनका तोड़ रही हैं (उनकी बलैयाँ ले रही हैं) और मणि, वस्त्र तथा आभूषण निछावर करके आरती उतार रही और मंगलगान कर रही हैं। देवता फूल बरसा रहे हैं और सूत, मागध तथा भाट सुयश सुना रहे हैं॥1॥

***कोहबरहिं आने कुअँर कुअँरि सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै।अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाइ कै॥ लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं। रनिवासु हास बिलास रस बस जन्म को फलु सब लहैं॥2॥

भावार्थ:

सुहागिनी स्त्रियाँ सुख पाकर कुँअर और कुमारियों को कोहबर (कुलदेवता के स्थान) में लाईं और अत्यन्त प्रेम से मंगल गीत गा-गाकर लौकिक रीति करने लगीं। पार्वतीजी श्री रामचन्द्रजी को लहकौर (वर-वधू का परस्पर ग्रास देना) सिखाती हैं और सरस्वतीजी सीताजी को सिखाती हैं। रनिवास हास-विलास के आनंद में मग्न है, (श्री रामजी और सीताजी को देख-देखकर) सभी जन्म का परम फल प्राप्त कर रही हैं॥2॥

*** निज पानि मनि महुँ देखिअति मूरति सुरूपनिधान की।चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरह भय बस जानकी॥ कौतुक बिनोद प्रमोदु प्रेमु न जाइ कहि जानहिं अलीं। बर कुअँरि सुंदर सकल सखीं लवाइ जनवासेहि चलीं॥3॥

भावार्थ:

'अपने हाथ की मणियों में सुंदर रूप के भण्डार श्री रामचन्द्रजी की परछाहीं दिख रही है। यह देखकर जानकीजी दर्शन में वियोग होने के भय से बाहु रूपी लता कोऔर दृष्टि को हिलाती-डुलाती नहीं हैं। उस समय के हँसी-खेल और विनोद का आनंद और प्रेम कहा नहीं जा सकता, उसे सखियाँ ही जानती हैं। तदनन्तर वर-कन्याओं को सब सुंदर सखियाँ जनवासे को लिवा चलीं॥3॥

*** तेहि समय सुनिअ असीस जहँ तहँ नगर नभ आनँदु महा। चिरु जिअहुँ जोरीं चारु चार्‌यो मुदित मन सबहीं कहा॥ जोगींद्र सिद्ध मुनीस देव बिलोकि प्रभु दुंदुभि हनी। चले हरषि बरषि प्रसून निज निज लोक जय जय जय भनी॥4॥

भावार्थ:

उस समय नगर और आकाश में जहाँ सुनिए, वहीं आशीर्वाद की ध्वनि सुनाई दे रही है और महान आनंद छाया है। सभी ने प्रसन्न मन से कहा कि सुंदर चारों जोड़ियाँ चिरंजीवी हों। योगीराज, सिद्ध, मुनीश्वर और देवताओं ने प्रभु श्री रामचन्द्रजी को देखकर दुन्दुभी बजाई और हर्षित होकर फूलों की वर्षा करते हुए तथा 'जय हो, जय हो, जय हो' कहते हुए वे अपने-अपने लोक को चले॥4॥

दोहा :

*** सहित बधूटिन्ह कुअँर सब तब आए पितु पास। सोभा मंगल मोद भरि उमगेउ जनु जनवास॥327॥

भावार्थ:

तब सब (चारों) कुमार बहुओं सहित पिताजी के पास आए। ऐसा मालूम होता था मानो शोभा, मंगल और आनंद से भरकर जनवासा उमड़ पड़ा हो॥327॥

चौपाई :

*** पुनि जेवनार भई बहु भाँती। पठए जनक बोलाइ बराती॥ परत पाँवड़े बसन अनूपा। सुतन्ह समेत गवन कियो भूपा॥1॥

भावार्थ:

फिर बहुत प्रकार की रसोई बनी। जनकजी ने बारातियों को बुला भेजा। राजा दशरथजी नेपुत्रों सहित गमन किया। अनुपम वस्त्रों के पाँवड़े पड़ते जाते हैं॥1॥

*** सादर सब के पाय पखारे। जथाजोगु पीढ़न्ह बैठारे॥ धोए जनक अवधपति चरना। सीलु सनेहु जाइ नहिं बरना॥2॥

भावार्थ:

आदर के साथ सबके चरण धोए और सबको यथायोग्य पीढ़ों पर बैठाया। तब जनकजी ने अवधपति दशरथजी के चरण धोए। उनका शील और स्नेह वर्णन नहीं किया जा सकता॥2॥

*** बहुरि राम पद्म पंकज धोए। जे हर हृदय कमल महुँ गोए॥ तीनिउ भाइ राम सम जानी। धोए चरन जनक निज पानी॥3॥

भावार्थ:

फिर श्री रामचन्द्रजी के चरणकमलों को धोया, जो श्री शिवजी के हृदय कमल में छिपे रहते हैं। तीनों भाइयों को श्री रामचन्द्रजी के समान जानकर जनकजी ने उनके भी चरण अपने हाथों से धोए॥3॥

*** आसन उचित सबहि नृप दीन्हे। बोलि सूपकारी सब लीन्हे॥ सादर लगे परन पनवारे। कनक कील मनि पान सँवारे॥4॥

भावार्थ:

राजा जनकजी ने सभी को उचित आसन दिए और सब परसने वालों को बुला लिया। आदर के साथ पत्तलें पड़ने लगीं, जो मणियों के पत्तों से सोने की कील लगाकर बनाई गई थीं॥4॥

दोहा :

*** सूपोदन सुरभी सरपि सुंदर स्वादु पुनीत। छन महुँ सब कें परुसि गे चतुर सुआर बिनीत॥328॥

भावार्थ:

चतुर और विनीत रसोइए सुंदर, स्वादिष्ट और पवित्र दाल-भात और गाय का (सुगंधित) घी क्षण भर में

सबके सामने परस गए॥328॥

चौपाई :

*** पंच कवल करि जेवन लागे। गारि गान सुनि अति अनुरागे। भाँति अनेक परे पकवाने। सुधा सरिस नहिं जाहिं बखाने॥1॥

भावार्थ:

सब लोग पंचकौर करके (अर्थात 'प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा और समानाय स्वाहा' इन मंत्रों का उच्चारण करते हुए पहलेपाँच ग्रास लेकर) भोजन करने लगे। गाली का गाना सुनकर वे अत्यन्त प्रेममग्न हो गए। अनेकों तरह के अमृत के समान (स्वादिष्ट) पकवान परसे गए, जिनका बखान नहीं हो सकता॥1॥

*** परुसन लगे सुआर सुजाना। बिंजन बिबिध नाम को जाना॥ चारि भाँति भोजन बिधि गाई। एक एक बिधि बरनि न जाई॥2॥

भावार्थ:

चतुर रसोइए नाना प्रकार के व्यंजन परसने लगे, उनका नाम कौन जानता है। चार प्रकार के (चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय अर्थात चबाकर, चूसकर, चाटकर और पीना-खाने योग्य) भोजन की विधि कही गई है, उनमें से एक-एक विधि के इतने पदार्थ बने थे कि जिनका वर्ण नहीं किया जा सकता॥2॥

*** छरस रुचिर बिंजन बहु जाती। एक एक रस अगनित भाँती॥ जेवँत देहिं मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरुष अरु नारी॥3॥

भावार्थ:

छहों रसों के बहुततरह के सुंदर (स्वादिष्ट) व्यंजन हैं। एक-एक रस के अनगिनत प्रकार के बने हैं। भोजन के समय पुरुष और स्त्रियों के नाम ले-लेकर स्त्रियाँ मधुर ध्वनि से गाली दे रही हैं (गाली गा रही हैं)॥3॥

*** समय सुहावनि गारि बिराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा॥ एहि बिधि सबहीं भोजनु कीन्हा। आदर सहित आचमनु दीन्हा॥4॥

भावार्थ:

समय की सुहावनी गाली शोभित हो रही है। उसे सुनकर समाज सहित राजा दशरथजी हँस रहे हैं। इस रीति से सभी ने भोजन किया और तब सबको आदर सहित आचमन (हाथ-मुँह धोने के लिए जल) दिया गया॥4॥

दोहा :

*** देइ पान पूजे जनक दसरथु सहित समाज। जनवासेहि गवने मुदित सकल भूप सिरताज॥329॥

भावार्थ:

फिर पान देकर जनकजी ने समाज सहित दशरथजी का पूजन किया। सब राजाओं के सिरमौर (चक्रवर्ती)

श्री दशरथजी प्रसन्न होकर जनवासे को चले॥329॥

चौपाई :

*** नित नूतन मंगल पुर माहीं। निमिष सरिस दिन जामिनि जाहीं॥ बड़े भोर भूपतिमनि जागे। जाचक गुन गन गावन लागे॥1॥

भावार्थ:

जनकपुर में नित्य नए मंगल हो रहे हैं। दिन और रात पल के समान बीत जाते हैं। बड़े सबेरे राजाओं के मुकुटमणि दशरथजी जागे। याचक उनके गुण समूह का गान करनेलगे॥1॥

*** देखि कुअँर बर बधुन्ह समेता।किमि कहि जात मोदु मन जेता॥ प्रातक्रिया करि गे गुरु पाहीं। महाप्रमोदु प्रेमु मन माहीं॥2॥

भावार्थ:

चारों कुमारों को सुंदर वधुओं सहित देखकर उनके मन में जितना आनंद है, वह किस प्रकार कहा जा सकता है? वे प्रातः क्रिया करके गुरु वशिष्ठजी के पास गए। उनके मन में महान आनंद और प्रेम भरा है॥2॥

*** करि प्रनामु पूजा कर जोरी। बोले गिरा अमिअँ जनु बोरी॥ तुम्हरी कृपाँ सुनहु मुनिराजा।भयउँ आजु मैं पूरन काजा॥3॥

भावार्थ:

राजा प्रणाम और पूजन करके, फिर हाथ जोड़कर मानो अमृत में डुबोई हुई वाणी बोले- हे मुनिराज! सुनिए, आपकी कृपा से आज मैं पूर्णकाम हो गया॥3॥

*** अब सब बिप्र बोलाइ गोसाईं। देहु धेनु सब भाँति बनाईं॥ सुनि गुर करि महिपाल बड़ाई। पुनिपठए मुनिबृंद बोलाई॥4॥

भावार्थ:

हे स्वामिन्! अब सब ब्राह्मणों को बुलाकर उनको सब तरह (गहनों-कपड़ों) से सजी हुई गायें दीजिए। यह सुनकर गुरुजी ने राजा की बड़ाई करके फिर मुनिगणों कोबुलवा भेजा॥4॥

दोहा :

*** बामदेउ अरु देवरिषि बालमीकि जाबालि। आए मुनिबर निकर तब कौसिकादि तपसालि॥330॥

भावार्थ:

तब वामदेव, देवर्षि नारद, वाल्मीकि, जाबालि और विश्वामित्र आदि तपस्वी श्रेष्ठ मुनियों के समूह के समूह आए॥330॥

चौपाई :

*** दंड प्रनाम सबहि नृप कीन्हे। पूजि सप्रेम बरासन दीन्हे॥ चारि लच्छ बर धेनु मगाईं। काम सुरभि सम

सील सुहाई॥1॥

भावार्थ:

राजा ने सबको दण्डवत् प्रणाम किया और प्रेम सहित पूजन करके उन्हें उत्तम आसन दिए। चार लाख उत्तम गायें मँगवाईं, जो कामधेनु के समान अच्छे स्वभाव वाली और सुहावनी थीं॥1॥

*** सब बिधि सकल अलंकृत कीन्हीं। मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्हीं॥ करत बिनय बहु बिधि नरनाहू। लहेउँ आजु जग जीवन लाहू॥2॥

भावार्थ:

उन सबको सब प्रकार से (गहनों-कपड़ों से) सजाकर राजा ने प्रसन्न होकर भूदेव ब्राह्मणों को दिया। राजा बहुत तरह से विनती कर रहे हैं कि जगत में मैंने आज ही जीने का लाभ पाया॥2॥

*** पाइ असीस महीसु अनंदा। लिए बोलि पुनि जाचक बृंदा॥ कनक बसन मनि हय गय स्यंदन। दिए बूझि रुचि रबिकुलनंदन॥3॥

भावार्थ:

(ब्राह्मणों से) आशीर्वाद पाकर राजा आनंदित हुए। फिर याचकों के समूहों को बुलवा लिया और सबको उनकी रुचि पूछकर सोना, वस्त्र, मणि, घोड़ा, हाथी और रथ (जिसने जो चाहा सो) सूर्यकुल को आनंदित करने वाले दशरथजी ने दिए॥3॥

*** चले पढ़त गावत गुन गाथा। जय जय जय दिनकर कुल नाथा॥ एहि बिधि राम बिआह उछाहू। सकइ न बरनि सहस मुख जाहू॥4॥

भावार्थ:

वे सब गुणानुवाद गाते और 'सूर्यकुल के स्वामी की जय हो, जय हो, जय हो' कहते हुए चले। इस प्रकार श्री रामचन्द्रजी के विवाह का उत्सव हुआ, जिन्हें सहस्र मुख हैं, वे शेषजी भी उसका वर्णन नहीं कर सकते॥4॥

दोहा :

*** बार बार कौसिक चरन सीसु नाइ कह राउ। यह सबु सुखु मुनिराज तव कृपा कटाच्छ पसाउ॥331॥

भावार्थ:

बार-बार विश्वामित्रजी के चरणों में सिर नवाकर राजा कहते हैं- हे मुनिराज! यह सब सुख आपके ही कृपाकटाक्ष का प्रसाद है॥331॥

चौपाई :

*** जनक सनेहु सीलु करतूती। नृपु सब भाँति सराह बिभूती॥ दिन उठि बिदा अवधपति मागा। राखहिं जनकु सहित अनुरागा॥1॥

भावार्थ:

राजा दशरथजी जनकजी के स्नेह, शील, करनी और ऐश्वर्य की सब प्रकार से सराहना करते हैं। प्रतिदिन

(सबेरे) उठकर अयोध्या नरेश विदा माँगते हैं। पर जनकजी उन्हें प्रेम से रख लेते हैं॥1॥

*** नित नूतन आदरु अधिकाई। दिन प्रति सहस भाँति पहुनाई॥ नित नव नगर अनंद उछाहू। दसरथ गवनु सोहाइ न काहू॥2॥

भावार्थ:

आदर नित्य नया बढ़ता जाता है। प्रतिदिन हजारों प्रकार से मेहमानी होती है। नगर में नित्य नया आनंद और उत्साह रहता है, दशरथजी का जाना किसी को नहीं सुहाता॥2॥

*** बहुत दिवसबीते एहि भाँती। जनु सनेह रजु बँधे बराती॥ कौसिक सतानंद तब जाई। कहा बिदेह नृपहि समुझाई॥3॥

भावार्थ:

इस प्रकार बहुत दिन बीत गए, मानो बाराती स्नेह की रस्सी से बँध गए हैं। तब विश्वामित्रजी और शतानंदजी ने जाकर राजा जनक को समझाकर कहा-॥3॥

*** अब दसरथ कहँ आयसु देहू। जद्यपि छाड़ि न सकहु सनेहू॥ भलेहिं नाथ कहि सचिव बोलाए। कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए॥4॥

भावार्थ:

यद्यपि आप स्नेह (वश उन्हें) नहीं छोड़ सकते, तो भी अब दशरथजी को आज्ञा दीजिए। 'हे नाथ! बहुत अच्छा' कहकर जनकजी ने मंत्रियों को बुलवाया। वे आए और 'जय जीव' कहकर उन्होंने मस्तक नवाया॥4॥

दोहा :

*** अवधनाथु चाहत चलन भीतर करहु जनाउ। भए प्रेमबस सचिव सुनि बिप्र सभासद राउ॥332॥

भावार्थ:

(जनकजी ने कहा-) अयोध्यानाथ चलना चाहते हैं, भीतर (रनिवास में) खबर कर दो। यह सुनकर मंत्री, ब्राह्मण, सभासद और राजा जनक भी प्रेम के वश हो गए॥332॥

चौपाई :

*** पुरबासी सुनि चलिहि बराता। बूझत बिकल परस्पर बाता॥ सत्य गवनु सुनि सब बिलखाने। मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने॥1॥

भावार्थ:

जनकपुरवासियों ने सुना कि बारात जाएगी, तब वे व्याकुल होकर एक-दूसरे से बात पूछने लगे। जाना सत्य है, यह सुनकर सब ऐसे उदास हो गए मानो संध्या के समय कमल सकुचा गए हों॥1॥

*** जहँ जहँ आवत बसे बराती। तहँ तहँ सिद्ध चला बहु भाँती॥ बिबिध भाँति मेवा पकवाना। भोजन साजु न जाइ बखाना॥2॥

भावार्थ:

आते समय जहाँ-जहाँ बाराती ठहरे थे, वहाँ-वहाँ बहुत प्रकार का सीधा (रसोई का सामान) भेजा गया। अनेकों प्रकार के मेवे, पकवान और भोजन की सामग्री जो बखानी नहीं जा सकती-॥2॥

*** भरि भरि बसहँ अपार कहारा। पठईं जनक अनेक सुसारा॥ तुरग लाख रथ सहस पचीसा। सकल सँवारे नख अरु सीसा॥3॥

भावार्थ:

अनगिनत बैलों और कहारों पर भर-भरकर (लाद-लादकर) भेजी गई। साथ ही जनकजी ने अनेकों सुंदर शय्याएँ (पलंग) भेजीं। एक लाख घोड़े और पचीस हजार रथ सब नख से शिखा तक (ऊपर से नीचे तक) सजाए हुए॥3॥

दोहा :

*** मत्त सहस दस सिंधुर साजे। जिन्हहि देखि दिसिकुंजर लाजे॥ कनक बसन मनि भरि भरि जाना। महिषीं धेनु बस्तु बिधि नाना॥4॥

भावार्थ:

दस हजार सजे हुए मतवाले हाथी, जिन्हें देखकर दिशाओं के हाथी भी लजा जाते हैं, गाड़ियों में भर-भरकर सोना, वस्त्र और रत्न (जवाहरात) और भैंस, गाय तथा और भी नाना प्रकार की चीजें दीं॥4॥

दोहा :

*** दाइज अमित न सकिअ कहि दीन्ह बिदेहँ बहोरि। जो अवलोकत लोकपति लोक संपदा थोरि॥333॥

भावार्थ:

(इस प्रकार) जनकजी ने फिर से अपरिमित दहेज दिया, जो कहा नहीं जा सकता और जिसे देखकर लोकपालों के लोकों की सम्पदा भी थोड़ी जान पड़ती थी॥333॥

चौपाई :

*** सबु समाजु एहि भाँति बनाई। जनक अवधपुर दीन्ह पठाई॥ चलिहि बरात सुनत सब रानीं। बिकल मीनगन जनु लघु पानीं॥1॥

भावार्थ:

इस प्रकार सब सामान सजाकर राजा जनक ने अयोध्यापुरी को भेज दिया। बारात चलेगी, यह सुनते ही सब रानियाँ ऐसी विकल हो गईं, मानो थोड़े जल में मछलियाँ छटपटा रही हों॥1॥

*** पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं। देह असीस सिखावनु देहीं॥ होएहु संतत पियहि पिआरी। चिरु अहिबात असीस हमारी॥2॥

भावार्थ:

वे बार-बार सीताजी को गोद कर लेती हैं और आशीर्वाद देकर सिखावन देती हैं- तुम सदा अपने पति की

प्यारी होओ, तुम्हारा सोहाग अचल हो, हमारी यही आशीष है॥2॥

*** सासु ससुर गुर सेवा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू॥ अति सनेह बस सखीं सयानी। नारि धरम सिखवहिं मृदु बानी॥3॥

भावार्थ:

सास, ससुर और गुरु की सेवा करना। पति का रुख देखकर उनकी आज्ञा का पालन करना।सयानी सखियाँ अत्यन्त स्नेह के वश कोमल वाणी से स्त्रियों के धर्म सिखलाती हैं॥3॥

*** सादर सकल कुअँरि समुझाईं। रानिन्ह बार बार उर लाईं॥ बहुरि बहुरि भेटहिं महतारीं। कहहिं बिरंचि रचीं कत नारीं॥4॥

भावार्थ:

आदर के साथ सब पुत्रियों को (स्त्रियों के धर्म) समझाकर रानियों ने बार-बार उन्हें हृदय से लगाया। माताएँ फिर-फिर भेंटती और कहती हैं कि ब्रह्मा ने स्त्री जाति को क्यों रचा॥4॥

दोहा :

*** तेहि अवसर भाइन्ह सहित रामु भानु कुल केतु। चले जनक मंदिर मुदित बिदा करावन हेतु॥334॥

भावार्थ:

उसी समय सूर्यवंश के पताका स्वरूप श्री रामचन्द्रजी भाइयों सहित प्रसन्न होकर विदा कराने के लिए जनकजी के महल को चले॥334॥

चौपाई :

*** चारिउ भाइ सुभायँ सुहाए। नगर नारि नर देखन धाए॥ कोउ कह चलन चहत हहिं आजू। कीन्ह बिदेह बिदा कर साजू॥1॥

भावार्थ:

स्वभाव से ही सुंदर चारों भाइयों को देखने के लिए नगर के स्त्री-पुरुष दौड़े। कोई कहता है- आज ये जाना चाहते हैं। विदेह ने विदाई का सब सामान तैयार कर लिया है॥1॥

*** लेहु नयन भरि रूप निहारी। प्रिय पाहुने भूप सुत चारी॥ को जानै केहिं सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हे बिधि आनी॥2॥

भावार्थ:

राजा के चारों पुत्र, इन प्यारे मेहमानों के (मनोहर) रूप को नेत्र भरकर देख लो। हे सयानी! कौन जाने, किस पुण्य से विधाता ने इन्हें यहाँ लाकर हमारे नेत्रों का अतिथि किया है॥2॥

*** मरनसीलु जिमि पाव पिऊषा। सुरतरु लहै जनम कर भूखा॥ पाव नार की हरिपदु जैसें। इन्ह कर दरसनु हम कहँ तैसें॥3॥

भावार्थ:

मरने वाला जिस तरह अमृत पा जाए, जन्म का भूखा कल्पवृक्ष पा जाए और नरक में रहने वाला (या नरक के योग्य) जीव जैसे भगवान के परमपद को प्राप्त हो जाए, हमारे लिए इनके दर्शन वैसे ही हैं॥3॥

*** निरखि राम सोभा उर धरहू। निज मन फनि मूरति मनि करहू॥ एहि बिधि सबहि नयन फलु देता। गए कुअँर सब राज निकेता॥4॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी की शोभा को निरखकर हृदय में धर लो। अपने मन को साँप और इनकी मूर्ति को मणि बना लो। इस प्रकार सबको नेत्रों का फल देते हुए सब राजकुमारराजमहल में गए॥4॥

दोहा :

*** रूप सिंधु सब बंधु लखि हरषि उठा रनिवासु। करहिं निछावरि आरती महा मुदित मन सासु॥335॥

भावार्थ:

रूप के समुद्र सब भाइयों को देखकर सारा रनिवास हर्षित हो उठा। सासुएँ महान प्रसन्न मन से निछावर और आरती करती हैं॥335॥

चौपाई :

*** देखि राम छबि अति अनुरागीं। प्रेमबिबस पुनि पुनि पद लागीं॥ रही न लाज प्रीति उर छाई। सहज सनेहु बरनि किमि जाई॥1॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी की छबि देखकर वे प्रेम में अत्यन्त मग्न हो गईं और प्रेम के विशेष वश होकर बार-बार चरणों लगीं। हृदय में प्रीति छा गई, इससे लज्जा नहीं रह गई। उनके स्वाभाविक स्नेह का वर्णन किस तरह किया जा सकता है॥1॥

*** भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाए। छरस असन अति हेतु जेवाँए॥ बोले रामु सुअवसरु जानी। सील सनेह सकुचमय बानी॥2॥

भावार्थ:

उन्होंने भाइयों सहित श्री रामजी को उबटन करके स्नान कराया और बड़े प्रेम से षट्रस भोजन कराया। सुअवसर जानकर श्री रामचन्द्रजी शील, स्नेह और संकोचभरी वाणी बोले-॥2॥

*** राउ अवधपुर चहत सिधाए। बिदा होन हम इहाँ पठाए॥ मातु मुदित मन आयसु देहू। बालक जानि करब नित नेहू॥3॥

भावार्थ:

महाराज अयोध्यापुरी को चलाना चाहते हैं, उन्होंने हमें विदा होने के लिए यहाँ भेजा है। हे माता! प्रसन्न मन से आज्ञा दीजिए और हमें अपने बालक जानकर सदा स्नेह बनाए रखिएगा॥3॥

*** सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू। बोलि न सकहिं प्रेमबस सासू॥ हृदयँ लगाई कुअँरि सब लीन्ही। पतिन्ह

सौंपि बिनती अति कीन्ही॥4॥

भावार्थ:

इन वचनों को सुनते ही रनिवास उदास हो गया। सासुएँ प्रेमवश बोल नहीं सकतीं।उन्होंने सब कुमारियों को हृदय से लगा लिया और उनके पतियों को सौंपकर बहुत विनती की॥4॥

छन्द :

*** करि बिनय सिय रामहि समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहै। बलि जाउँतात सुजान तुम्ह कहुँ बिदित गति सब की अहै॥ परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानिबी। तुलसीस सीलु सनेहु लखि निज किंकरी करि मानिबी॥

भावार्थ:

विनती करके उन्होंने सीताजी को श्री रामचन्द्रजी को समर्पित किया और हाथ जोड़कर बार-बार कहा- हे तात! हे सुजान! मैं बलि जाती हूँ, तुमको सबकी गति (हाल) मालूम है। परिवार को, पुरवासियों को, मुझको और राजा को सीता प्राणों के समान प्रिय है, ऐसा जानिएगा। हे तुलसी के स्वामी! इसके शील और स्नेह को देखकर इसे अपनी दासी करके मानिएगा। सोरठा :

*** तुम्ह परिपूरन काम जान सिरोमनि भावप्रिय। जन गुन गाहक राम दोष दलन करुनायतन॥336॥

भावार्थ:

तुम पूर्ण काम हो, सुजान शिरोमणि हो और भावप्रिय हो (तुम्हें प्रेम प्यारा है)। हे राम! तुम भक्तों के गुणों को ग्रहण करने वाले, दोषों को नाश करने वाले और दया के धाम हो॥336॥

चौपाई :

*** अस कहि रही चरन गहि रानी। प्रेम पंक जनु गिरा समानी॥ सुनि सनेहसानी बर बानी। बहुबिधि राम सासु सनमानी॥1॥

भावार्थ:

ऐसा कहकर रानी चरणों को पकड़कर (चुप) रह गईं। मानो उनकी वाणी प्रेम रूपी दलदल में समा गई हो। स्नेह से सनी हुई श्रेष्ठ वाणी सुनकर श्री रामचन्द्रजी ने सास का बहुत प्रकार से सम्मान किया॥1॥

*** राम बिदा मागत कर जोरी। कीन्ह प्रनामु बहोरि बहोरी॥ पाइ असीस बहुरि सिरु नाई। भाइन्ह सहित चले रघुराई॥2॥

भावार्थ:

तब श्री रामचन्द्रजी ने हाथ जोड़कर विदा माँगते हुए बार-बार प्रणाम किया। आशीर्वाद पाकर और फिर सिर नवाकर भाइयों सहित श्री रघुनाथजी चले॥2॥

*** मंजु मधुर मूरति उर आनी। भईं सनेह सिथिल सब रानी॥ पुनि धीरजु धरि कुअँरि हँकारीं। बार बार भेटहि महतारीं॥3॥

भावार्थ:

श्री रामजी की सुंदर मधुर मूर्ति को हृदय में लाकर सब रानियाँ स्नेह से शिथिल हो गईं। फिर धीरज धारण करके कुमारियों को बुलाकर माताएँ बारंबार उन्हें (गले लगाकर) भेंटने लगीं॥3॥

*** पहुँचावहिं फिरि मिलहिं बहोरी। बढ़ी परस्पर प्रीति न थोरी॥ पुनि पुनि मिलत सखिन्ह बिलगाई। बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई॥4॥

भावार्थ:

पुत्रियों को पहुँचाती हैं फिर लौटकर मिलती हैं। परस्पर में कुछ थोड़ी प्रीति नहीं बढ़ी (अर्थात बहुत प्रीति बढ़ी)। बार-बार मिलती हुई माताओं को सखियों ने अलगकर दिया। जैसे हाल की ब्यायी हुई गाय को कोई उसके बालक बछड़े (या बछिया) से अलग कर दे॥4॥

दोहा :

*** प्रेमबिबस नर नारि सब सखिन्ह सहित रनिवासु। मानहुँ कीन्ह बिदेहपुर करुनाँ बिरहँ निवासु॥337॥

भावार्थ:

सब स्त्री-पुरुष और सखियों सहित सारा रनिवास प्रेम के विशेष वश हो रहा है। (ऐसा लगता है) मानो जनकपुर में करुणा और विरह ने डेरा डाल दिया है॥337॥

चौपाई :

*** सुक सारिका जानकी ज्याए। कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाए॥ ब्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही। सुनि धीरजु परिहरइ न केही॥1॥

भावार्थ:

जानकी ने जिन तोता और मैना को पाल-पोसकर बड़ा किया था और सोने के पिंजड़ों में रखकर पढ़ाया था, वे व्याकुल होकर कह रहे हैं- वैदेही कहाँ हैं। उनके ऐसे वचनों को सुनकर धीरज किसको नहीं त्याग देगा (अर्थात सबका धैर्य जाता रहा)॥1॥

*** भए बिकल खग मृग एहि भाँती। मनुज दसा कैसें कहि जाती॥ बंधु समेत जनकु तब आए। प्रेम उमगि लोचन जल छाए॥2॥

भावार्थ:

जब पक्षी और पशु तक इस तरह विकल हो गए, तब मनुष्यों की दशा कैसे कही जा सकती है! तब भाई सहित जनकजी वहाँ आए। प्रेम से उमड़कर उनके नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया॥2॥

*** सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी॥ लीन्हि रायँ उर लाइ जानकी। मिटी महामरजाद ग्यान की॥3॥

भावार्थ:

वे परम वैराग्यवान कहलाते थे, पर सीताजी को देखकर उनका भी धीरज भाग गया। राजा ने जानकीजी को

हृदय से लगा लिया। (प्रेम के प्रभाव से) ज्ञान की महान मर्यादा मिट गई (ज्ञान का बाँध टूट गया)॥3॥

*** समुझावत सब सचिव सयाने। कीन्ह बिचारु न अवसर जाने॥ बारहिं बार सुता उर लाईं। सजि सुंदर पालकीं मगाईं॥4॥

भावार्थ:

सब बुद्धिमान मंत्री उन्हें समझाते हैं। तब राजा ने विषाद करने का समय न जानकर विचार किया। बारंबार पुत्रियों को हृदय से लगाकर सुंदर सजी हुई पालकियाँ मँगवाई॥4॥

दोहा :

*** प्रेमबिबस परिवारु सबु जानि सुलगन नरेस। कुअँरि चढ़ाईं पालकिन्ह सुमिरे सिद्धि गनेस॥338॥

भावार्थ:

सारा परिवार प्रेम में विवश है। राजा ने सुंदर मुहूर्त जानकर सिद्धि सहित गणेशजी का स्मरण करके कन्याओं को पालकियों पर चढ़ाया॥338॥

चौपाई :

*** बहु बिधि भूप सुता समुझाईं। नारिधरमु कुलरीति सिखाईं॥ दासीं दास दिए बहुतेरे। सुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे॥1॥

भावार्थ:

राजा ने पुत्रियों को बहुत प्रकार से समझाया और उन्हें स्त्रियों का धर्म और कुल की रीति सिखाई। बहुत से दासी-दास दिए, जो सीताजी के प्रिय और विश्वास पात्र सेवक थे॥1॥

*** सीय चलत ब्याकुल पुरबासी। होहिं सगुन सुभ मंगल रासी॥ भूसुर सचिव समेत समाजा। संग चले पहुँचावन राजा॥2॥

भावार्थ:

सीताजी के चलते समय जनकपुरवासी व्याकुल हो गए। मंगल की राशि शुभ शकुन हो रहे हैं। ब्राह्मण और मंत्रियों के समाज सहित राजा जनकजी उन्हें पहुँचाने के लिए साथ चले॥2॥

*** समय बिलोकि बाजने बाजे। रथ गज बाजि बरातिन्ह साजे॥ दसरथ बिप्र बोलि सब लीन्हे। दान मान परिपूरन कीन्हे॥3॥

भावार्थ:

समय देखकर बाजे बजने लगे। बारातियों ने रथ, हाथी और घोड़े सजाए। दशरथजी ने सब ब्राह्मणों को बुला लिया और उन्हें दान और सम्मान से परिपूर्ण कर दिया॥3॥

*** चरन सरोज धूरि धरि सीसा। मुदित महीपति पाइ असीसा॥ सुमिरि गजाननु कीन्ह पयाना। मंगल मूल सगुन भए नाना॥4॥

भावार्थ:

उनके चरण कमलों की धूलि सिर पर धरकर और आशीष पाकर राजा आनंदित हुए और गणेशजी का स्मरण करके उन्होंने प्रस्थान किया। मंगलों के मूल अनेकों शकुन हुए॥4॥

दोहा :

*** सुर प्रसून बरषहिं हरषि करहिं अपछरा गान। चले अवधपति अवधपुर मुदित बजाइ निसान॥339॥

भावार्थ:

देवता हर्षित होकर फूल बरसा रहे हैं और अप्सराएँ गान कर रही हैं। अवधपति दशरथजी नगाड़े बजाकर आनंदपूर्वक अयोध्यापुरी चले॥339॥

चौपाई :

*** नृप करि बिनय महाजन फेरे। सादर सकल मागने टेरे॥ भूषन बसन बाजि गज दीन्हे। प्रेम पोषि ठाढ़े सब कीन्हे॥1॥

भावार्थ:

राजा दशरथजी ने विनती करके प्रतिष्ठित जनों को लौटाया और आदर के साथ सब मँगनों को बुलवाया। उनको गहने-कपड़े, घोड़े-हाथी दिए और प्रेम से पुष्ट करके सबको सम्पन्न अर्थात बलयुक्त कर दिया॥1॥।

*** बार बार बिरिदावलि भाषी। फिरे सकल रामहि उर राखी॥ बहुरि बहुरि कोसलपति कहहीं। जनकु प्रेमबस फिरै न चहहीं॥2॥

भावार्थ:

वे सब बारंबार विरुदावली (कुलकीर्ति) बखानकर और श्री रामचन्द्रजी को हृदय में रखकर लौटे। कोसलाधीश दशरथजी बार-बार लौटने को कहते हैं, परन्तु जनकजी प्रेमवश लौटना नहीं चाहते॥2॥

*** पुनि कह भूपत बचन सुहाए। फिरिअ महीस दूरि बड़ि आए॥ राउ बहोरि उतरि भए ठाढ़े। प्रेम प्रबाह बिलोचन बाढ़े॥3॥

भावार्थ:

दशरथजी ने फिर सुहावने वचन कहे- हे राजन्! बहुत दूर आ गए, अब लौटिए। फिर राजा दशरथजी रथ से उतरकर खड़े हो गए। उनके नेत्रों में प्रेम का प्रवाह बढ़ आया (प्रेमाश्रुओं की धारा बह चली)॥3॥

*** तब बिदेह बोले कर जोरी। बचन सनेह सुधाँ जनु बोरी॥ करौं कवन बिधि बिनय बनाई। महाराज मोहि दीन्हि बड़ाई॥4॥

भावार्थ:

तब जनकजी हाथ जोड़कर मानो स्नेह रूपी अमृत में डुबोकर वचन बोले- मैं किस तरह बनाकर (किन शब्दों में) विनती करूँ। हे महाराज! आपने मुझे बड़ी बड़ाई दी है॥4॥

दोहा :

*** कोसलपति समधी सजन सनमाने सब भाँति। मिलनि परसपर बिनय अति प्रीति न हृदयँ

समाति॥340॥

भावार्थ:

अयोध्यानाथ दशरथजी ने अपने स्वजन समधी का सब प्रकार से सम्मान किया। उनके आपस के मिलने में अत्यन्त विनय थी और इतनी प्रीति थी जो हृदय में समाती न थी॥340॥

चौपाई :

*** मुनि मंडलिहि जनक सिरु नावा। आसिरबादु सबहि सन पावा॥ सादर पुनि भेंटे जामाता। रूप सील गुन निधि सब भ्राता॥1॥

भावार्थ:

जनकजी ने मुनि मंडली को सिर नवाया और सभी से आशीर्वाद पाया। फिर आदर के साथ वे रूप, शील और गुणों के निधान सब भाइयों से, अपने दामादों से मिले,॥1॥

*** जोरि पंकरुह पानि सुहाए। बोले बचन प्रेम जनु जाए॥ राम करौं केहि भाँति प्रसंसा। मुनि महेस मन मानस हंसा॥2॥

भावार्थ:

और सुंदर कमल के समान हाथों को जोड़कर ऐसे वचन बोले जो मानो प्रेम से ही जन्मे हों। हे रामजी! मैं किस प्रकार आपकी प्रशंसा करूँ! आप मुनियों और महादेवजी के मन रूपी मानसरोवर के हंस हैं॥2॥

*** करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोहु मोहु ममता मदु त्यागी॥ ब्यापकु ब्रह्मु अलखु अबिनासी। चिदानंदु निरगुन गुनरासी॥3॥

भावार्थ:

योगी लोग जिनके लिए क्रोध, मोह, ममता और मद को त्यागकर योग साधन करते हैं, जो सर्वव्यापक, ब्रह्म, अव्यक्त, अविनाशी, चिदानंद, निर्गुण और गुणों की राशि हैं,॥3॥

***मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी॥ महिमा निगमु नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एकरस रहई॥4॥

भावार्थ:

जिनको मन सहित वाणी नहीं जानती और सब जिनका अनुमान ही करते हैं, कोई तर्कना नहीं कर सकते, जिनकी महिमा को वेद 'नेति' कहकर वर्णन करता है और जो (सच्चिदानंद) तीनों कालों में एकरस (सर्वदा और सर्वथा निर्विकार) रहते हैं,॥4॥

दोहा :

*** नयन बिषय मो कहुँ भयउ सो समस्त सुख मूल। सबइ लाभु जग जीव कहँ भएँ ईसु अनुकूल॥341॥

भावार्थ:

वे ही समस्त सुखों के मूल (आप) मेरे नेत्रों के विषय हुए। ईश्वर के अनुकूल होने पर जगत में जीव को

सब लाभ ही लाभ है॥341॥

चौपाई :

*** सबहि भाँति मोहि दीन्हि बड़ाई। निज जन जानि लीन्ह अपनाई॥ होहिं सहस दस सारद सेषा। करहिं कलप कोटिक भरि लेखा॥1॥

भावार्थ:

आपने मुझे सभी प्रकार से बड़ाई दी और अपना जन जानकर अपना लिया। यदि दस हजार सरस्वती और शेष हों और करोड़ों कल्पों तक गणना करते रहें॥1॥

*** मोर भाग्य राउर गुन गाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा॥ मैं कछु कहउँ एक बल मोरें। तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरें॥2॥

भावार्थ:

तो भी हे रघुनाजी! सुनिए, मेरे सौभाग्य और आपके गुणों की कथा कहकर समाप्त नहीं की जा सकती। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह अपने इस एक ही बल पर कि आप अत्यन्त थोड़े प्रेम से प्रसन्न हो जाते हैं॥2॥

*** बार बार मागउँ कर जोरें। मनु परिहरै चरन जनि भोरें॥ सुनि बर बचन प्रेम जनु पोषे। पूरनकाम रामु परितोषे॥3॥

भावार्थ:

मैं बार-बार हाथ जोड़कर यह माँगता हूँ कि मेरा मन भूलकर भी आपके चरणों को नछोड़े। जनकजी के श्रेष्ठ वचनों को सुनकर, जो मानो प्रेम से पुष्ट किए हुए थे, पूर्ण काम श्री रामचन्द्रजी संतुष्ट हुए॥3॥

*** करि बर बिनय ससुर सनमाने। पितु कौसिक बसिष्ठ सम जाने॥ बिनती बहुरि भरत सन कीन्ही। मिलि सप्रेमु पुनि आसिष दीन्ही॥4॥

भावार्थ:

उन्होंने सुंदर विनती करके पिता दशरथजी, गुरु विश्वामित्रजी और कुलगुरुवशिष्ठजी के समान जानकर ससुर जनकजी का सम्मान किया। फिर जनकजी ने भरतजी से विनती की और प्रेम के साथ मिलकर फिर उन्हें आशीर्वाद दिया॥4॥

दोहा :

*** मिले लखन रिपुसूदनहि दीन्हि असीस महीस। भए परसपर प्रेमबस फिरि फिरि नावहिं सीस॥342॥

भावार्थ:

फिर राजा ने लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी से मिलकर उन्हें आशीर्वाद दिया। वे परस्पर प्रेम के वश होकर बार-बार आपस में सिर नवाने लगे॥342॥

चौपाई :

*** बार बार करि बिनय बड़ाई। रघुपति चले संग सब भाई॥ जनक गहे कौसिक पद जाई। चरन रेनु सिर

नयनन्ह लाई॥1॥

भावार्थ:

जनकजी की बार-बार विनती और बड़ाई करके श्री रघुनाथजी सब भाइयों के साथ चले। जनकजी ने जाकर विश्वामित्रजी के चरण पकड़ लिए और उनके चरणों की रज को सिर और नेत्रों में लगाया॥1॥

*** सुनु मुनीस बर दरसन तोरें। अगमु न कछु प्रतीति मन मोरें॥ जो सुखु सुजसु लोकपति चहहीं। करत मनोरथ सकुचत अहहीं॥2॥

भावार्थ:

(उन्होंने कहा-) हे मुनीश्वर! सुनिए, आपके सुंदर दर्शन से कुछ भी दुर्लभ नहीं है, मेरे मन में ऐसा विश्वास है, जो सुख और सुयश लोकपाल चाहते हैं, परन्तु (असंभव समझकर) जिसका मनोरथ करते हुए सकुचाते हैं,॥2॥

*** सो सुखु सुजसु सुलभ मोहि स्वामी। सब सिधि तव दरसन अनुगामी॥ कीन्हि बिनय पुनि पुनिसिरु नाई। फिरे महीसु आसिषा पाई॥3॥

भावार्थ:

हे स्वामी! वही सुख और सुयश मुझे सुलभ हो गया, सारी सिद्धियाँ आपके दर्शनों की अनुगामिनी अर्थात पीछे-पीछे चलने वाली हैं। इस प्रकार बार-बार विनती की और सिर नवाकर तथा उनसे आशीर्वाद पाकर राजा जनक लौटे॥3॥